VOL- VII ISSUE- VII JULY 2020 PEER REVIEW e-JOURNAL IMPACT FACTOR 6.293 ISSN 2349-638x

उत्तर प्रदेश के विभिन्न लोकनाट्य : एक परिचय (वर्तमान परिपेक्ष्य में)

सोनिका बघेल,
रिसर्च स्कॉलर, संगीत विभाग,
डी ई आई आगरा।

जब लोक जीवन में जहाँ कहीं भी हर्ष–उल्लास, भावुकता के क्षण आते हैं तो मानव मन किसी न किसी माध्यम के रूप से उसे प्रदर्शित करता है। फिर चाहे वह माध्यम नृत्य हो या गीत और इन दोनों के संयोग से नाट्य की उत्पत्ति होती है। ये नाट्य प्राचीनकाल से ही मानव के मनोभावों की अभिव्यक्ति का माध्यम रहे हैं। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में भी कहा है कि–

" न तज्जनं न तच्छिल्पं न स विद्या न सा कला।
न स योगो न तत्कर्म न नाट्स्मिन यन्न दृश्यते।।"

अर्थात् ऐसा कोई ज्ञान, विद्या, कला, योग व कर्म नहीं है, जो नाट्य द्वारा प्रदर्शित न हो सके।

ये नाट्य उतने ही प्राचीन है, जितना मानव जीवन। या ये कहें कि जब से मानव जीवन का प्रारम्भ हुआ तब से इन लोकनाट्यों, लोकसंगीत का उदय हुआ। इन लोकनाट्यों में मानव को इसकी संस्कृति से बांधे रखने की अद्भुत शक्ति होती है। प्रारम्भ से लेकर वर्तमान तक हमारा ऐसा कोई भी संस्कार तथा प्रथा ऐसी नहीं है, जिसमें नाट्य, गीत संगीत का प्रयोग न हुआ हो। चाहे वो बच्चे के जन्म का अवसर हो या उसके मुण्डन की प्रथा हो, शादी–विवाह आदि की रस्में हो सभी में इन नाट्यों व संगीत का प्रयोग आदिकाल से ही किया जाता रहा है।

उत्तर प्रदेश एक ऐसा राज्य है जहाँ की संस्कृति में ये लोकनाट्य अपना प्रकाश फैला रहे हैं। यहाँ के तीज–त्यौहार, मेले तथा विभिन्न अनुष्ठानों में प्रस्तुत किये जाने वाले लोकनाट्य उत्तर प्रदेश की सांस्कृतिक छटा को अत्यन्त आकर्षित एवं प्रभावपूर्ण बनाते हैं। ये लोकनाट्य आम लोगों के जीवन में मनोरंजन का एक स्वस्थ साधन है, जिसमें बनावटीपन का नितांत अभाव होता है तथा आज की परिस्थितियों के अनुकूल समाज को कुछ न कुछ शिक्षा देता है।

उत्तर प्रदेश के आगरा जिले में प्राचीनकाल से ही साहित्य, काव्यकला, संगीत एवं अनेक कलाओं का संगम रहा है। साथ ही संगीत एवं लोकनाट्य में आगरा का गौरवपूर्ण इतिहास रहा है। उत्तर प्रदेश के लोकनाट्यों को हम कथानक, संगीत एवं नृत्य के आधार पर तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं–

1. **नृत्य प्रधान**– रासलीला।
2. **धार्मिक कथानक के आधार पर**– रामलीला।
3. **संगीत प्रधान**– भगत, नौटंकी, स्वांग इत्यादि।

वर्तमान में प्रचलित लोकनाट्यों में प्रमुख लोकनाट्य इस प्रकार है–

रासलीला– आज से लगभग पाँच हजार दो सौ साठ वर्ष पूर्व जब भगवान श्री कृष्ण ने राधारानी एवं गोपियों के साथ वृन्दावन की भूमि पर शरद पूर्णिमा की रात को मंडलाकार नृत्य किया था वह रास–नृत्य के नाम से जाना जाता है। श्री कृष्ण से इन्हीं कलाओं का मंचन उत्तर प्रदेश में रासलीला लोकनाट्य के माध्यम से किया जाता है। इस लोकनाट्य में श्री कृष्ण भगवान के लिये गोपी व राधा का प्रेम नाट्य रूप में प्रदर्शित किया जाता है। इसे कृष्ण–लीला नाम से भी जाना जाता है। इस नाट्य का आयोजन श्री कृष्ण जन्माष्टमी पर्व के आस–पास किया जाता है। जब पूरा देश जन्माष्टमी की तैयारी में लगा होता है। आगरा, मथुरा, वृन्दावन में जगह–जगह इन लीलाओं का मंचन होता है।

रामलीला– जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें भगवान श्री राम की लीलाओं का मंचन किया जाता है। यह भी एक धार्मिक लोकनाट्य है। जिसमें भगवान श्री राम के बचपन से लेकर, लंका पर विजय प्राप्त करके वापस अयोध्या आने की सभी घटनाओं का नाटकीय प्रदर्शन किया जाता है। इन घटनाओं के साथ ही समसायियक समस्याओं के उपायों को भी दर्शाया जाता है। यह लोकनाट्य लोगों में धार्मिक एवं

नैतिक मूल्यों के प्रचार का माध्यम है। जिस कारण आज भी इसकी लोकप्रियता में कोई कमी नही आई है। इसकी लोकप्रियता इस प्रकार भी जान सकते है कि विभिन्न क्षेत्रों की बोली जाने वाली विभिन्न भाषाओं में इसका मंचन किया जाता है जैसे– उड़ीसा में उड़ीया, बंगाल में बंग्ला, बिहार में भोजपुरी आदि भाषा में इसका मंचन किया जाता है। कहा जाता है कि इस लोकनाट्य की शुरूआत मुगलकाल में तुलसीदास जी ने काशी में की थी। इसका कथानक रामायण या राम की कहानी से सम्बन्धित होता है, जो दशहरा पर्व पर खेला जाता है। यह पर्व भारत के अतिरिक्त सुमात्रा, जावा एवं इंडोनेशिया में भी प्रसिद्ध है।

नौटंको– नौटंकी उत्तर भारत का सुप्रसिद्ध लोकनाट्य है। 19 वी शताब्दी के आस–पास नौटंकी शब्द की उत्पत्ति मानी जाती है। नौटंकी एक ऐसा लोकनाट्य है जिसका नाम सुनते ही नगाड़ों की थाप, इसके चुटीले संवाद और रंगत की छाप लोगों के दिलों–दिमाग पर छाने लगती है। नौटंकी की बात हो और नगाड़े का साथ न हो तो ऐसा हो ही नहीं सकता। नगाड़ा वाद्य नौटंकी लोकनाट्य की पहचान है। जब कहीं दूर गाँव में नौटंकी का आयोजन किया जाता था, जिसमें नगाडों के साथ विभिन्न लोक वाद्यों की एक रैली निकाली जाती थी, तो आवाज सुनकर लोग दौड़े चले आते थे। नौटंकी की मंच व्यवस्था में सामने के भाग को छोड़कर बाकी तीन भागों को बांस बल्लियों एवं उन पर परदा लगाकर तैयार किया जाता है। कानपुर क्षेत्र की नौटंकी अपने मंच सज्जा के लिये प्रख्यात रही है। इसके संवादों के लिये प्रादेशिक भाषा के ही उपयोग किया जाता है तथा लोकगीतों के आधार पर धुनों का चयन किया जाता है। इसमें सूत्रधार, संचालक एवं निर्देशक के रूप में रंगा होता है। जो इन तीनों का ही कार्य करता है एवं अपने चुटीले संवादों से लोगों का मनोरंजन तथा कार्यक्रम को आगे बढ़ाने का कार्य करता है। परन्तु भौतिकवादी सोच एवं इलैक्ट्रानिक मीडिया के चलते कुछ वर्षों पूर्व मनोरंजन का लोकप्रिय स्वरूप रही नौटंकी वर्तमान में आर्थिक संघर्षों के चलते अपने अस्तित्व के लिये लड़ रही है।

स्वांग– स्वांग लोकनाट्य परम्परा के मुख्य रूप से दो केन्द्र रहे है– आगरा और हाथरस। आगरा में इस विधा को भिक्की, बैजू, विद्या द्वारा फैलाया गया। वहीं हाथरस के स्वांग को नथाराम गौड़ व इनके शिष्यों द्वारा प्रचलित किया गया। स्वांग एक हास्य प्रधान नाट्य है। जिसका उद्देश्य हास्य द्वारा लोगों के मंनोरंजन के साथ सामाजिक समस्याओं को दर्शकों के समक्ष रखकर जागरूक किया जाता है।

स्वांग शब्द से तात्पर्य है किसी की हूबहू नकल करना। दूसरे शब्दों में, झूठा दिखावा करना स्वांग कहलाता है। इसको बहुरूपिया नाम से भी जाना जाता है। स्वांग लोकनाट्य का जादू लोगों के दिल एवं दिमाग पर अमिट छाप छोड़ता है। स्वंय कबीरदास जी ने अपने एक दोहे में इसका वर्णन किया है कि–

कथा होय तहँ श्रोता सोवे, वक्ता मूँड पचाया रे।
होय जहाँ कहीं स्वांग तमाशा, तनिक न नींद सताया रे।

अर्थात् कथा–कहानी से अधिक दर्शकों पर स्वांग के मंचन का प्रभाव देर तक रहता है। जहाँ कथावाचक की कथा सुनकर लोगों को कुछ समय बाद नींद आने लगती है। वहाँ यदि स्वांग का मंचन हो रहा हो तो दर्शक अपनी नींद भूलकर इसके आकर्षण में खोने लगते हैं। यह पंजाब, हरियाणा, ओडिशा, बंगाल, राजस्थान, उत्तर प्रदेश के ग्रामीण इलाकों में अत्यधिक प्रसिद्ध है। परन्तु वर्तमान परिपेक्ष में यह अब आकर्षण डिजिटल उपकरणों के आगे फीका पड़ने लगा है। वहीं अधिक कारणों में भी इसका मंचन कुछ ही जगहों पर कभी–कभार देखने को मिलता है।

भगत– 400 साल पुरानी भगत लोकनाट्य प्राचीनकाल से ही लोकजीवन में अपनी सुसमृद्ध एवं वैविध्यपूर्ण छांव बनायी हुई है। इसकी लोकप्रियता का कारण इसके धार्मिक कथानक हैं, जो किसी भी बनावटीपन एवं फूहड़ता से कोसो दूर हैं। भगत का केन्द्र मुख्य रूप से आगरा ही रहा है। कानपुर, हाथरस, वृन्दावन, गोकुल, गोवर्धन आदि जगहों पर भी भगत विधा का मंचन हुआ, परन्तु आगरा में इसको अधिक सफलता मिली। वर्तमान में आगरा को छोड़कर बाकी सभी जगह पर यह विधा शिथिल पड़ी है। आज इसका कथानक धार्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक है जिससे बदलते परिवेश में मनुष्य अपने मूल्यों को समक्षकर एक सच्चा आदर्श प्रस्तुत कर सकता है।

भगत विधा का कथानक पद्यात्मक होता है। जिसमें गायकी प्रमुख होती है। गायन द्वारा ही दोहे, चौबेले, बहरेतबील, दौड़ आदि गाये जाते है। वाद्यों में

हारमोनियम, नक्कारा, कटोरी, चिमटा आदि लोकवाद्य शामिल होते है।

पचास के दशक के आस–पास लोगों के पास मनोरंजन के अन्य साधन आ जाने के कारण इस नाट्य परम्परा को नकार दिया गया था। परन्तु कुछ समय पहले इसे फिर से कुछ संस्थानों द्वारा आधुनिक ढंग से जनमानस के समक्ष प्रस्तुत किया है। जिस कारण इसकी खोई हुई लोकप्रियता वापस आ गई है। जिसका अन्दाज इसके मंचन के दौरान दर्शकों की ऐतिहासिक भीड़ से लगाया जा सकता है। इलैक्ट्रानिक मीडिया के चलते कहीं हद तक इनके मंचन एवं प्रचार–प्रसार में बढोत्तरी हुई एवं कुछ समितियाँ भी हैं, जो आज भी भगत परम्परा को जीवित रखने का प्रयास कर रहीं हैं। जिसमें **'श्री काव्यकला भगत संगीत परिषद आगरा'** ऐसी समिति है, जो सन् 1949 से निरन्तर इसके प्रचार–प्रसार में लगी हुई है। इस परिषद के द्वारा अनेक भगत का सफल मंचन किया जा चुका है। जिसमें एक रूपया एक ईंट, मीराबाई, सुदामा, महावीर चरित्र, सीता की अग्नि परीक्षा, नारी का प्रतिकार आदि शामिल हैं।

इस प्रकार देखा जाये तो ये सभी लोकनाट्य हमारी सामाजिक एकता को बनाये रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जहाँ ये लोकनाट्य लोगों की मनोरंजन करने का साधन रही है। वहीं ये समाज की बुराईयों एवं कुरीतियों पर कटाक्ष करने से भी पीछे नहीं हटते। वर्तमान में हम सभी आधुनिकरण की दौड़ में शामिल हो रहे हैं। जहाँ सुख–शान्ति के नाम पर सिर्फ दिखावा रह ही गया है। कुछ वर्षों पूर्व तक ये लोकनाट्य हमारे सुख–दुख का आईना रहे है। इनका मंचन जब–जब हुआ, तब–तब इसने मानव की आत्मा से सम्बन्ध जोड़ा है। जिसके फलस्वरूप मानव मन को आनन्द के साथ–साथ शान्ति का भी अहसास हुआ है।

इन लोकनाट्यों के इतिहास को हमारा वर्तमान के आइने से देखना न्यायोचित नहीं होगा। इसके लिये हमें इससे सम्बन्धित अवधि वैदिक काल से इन लोकनाट्यों की उत्पत्ति से सम्बन्धित उस समय की धार्मिक, बौद्धिक, मानसिक, सांस्कृतिक, सम–सामयिक परिस्थितियों के अनुसार लोगो के जीवन व कृत्य का अध्ययन करते हुये कालान्तर में हुये इसके क्रमिक विकास को देखना होगा। तभी हम इन नाट्यों एवं हमारी संस्कृति, हमारी धरोहर इत्यादि को सही मायने में सहजने का कार्य इनकी गौरवपूर्ण गरिमा को ध्यान में रखकर कर सकते है। ये लोकनाट्य वैदिक युग से होते हुये पौराणिक काल के अंश अपने में समाहित करते हुये प्राचीन युग, मध्य युग व आधुनिक युग तक की कला को संग्रहित कर आज वर्तमान के रूप में हमारे समक्ष है।

आज भागदौड़ भरी जिन्दगी एवं इलैक्ट्रानिक मीडिया ने समाज को जकड़ रखा है। अब समय है कि अपनी संस्कृति को फिर से जीवित किया जाये तथा अपनी पीढ़ी को इससे अवगत कराया जाये। वर्तमान में यदि आज की पीढ़ी से पूछा जाये कि आप लोकनाट्यों के बारे में क्या जानते हैं तो बहुत से ऐसे होगें जिन्होंने इनका नाम पहली बार सुना होगा। **मार्कस गैरवे के अनुसार** – ''एक व्यक्ति जिसे अपने पूर्व इतिहास, उद्गम और संस्कृति के विषय में कोई जानकारी नही है उस वृक्ष के जैसा है, जिसकी जड़ नहीं है।''

लोकनाट्यों की वर्तमान स्थिति – वर्तमान स्थिति पर दृष्टिपात करें तो इलैक्ट्रानिक मीडिया द्वारा इन लोकनाट्यों का काफी हद तक विकास हुआ है तथा इनकी लोकप्रियता में बढ़ोत्तरी की है। अनेक प्रशासकीय संस्थानों द्वारा विभिन्न लोकनाट्य कलाकारों को राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पुरूस्कृत किया जाने लगा है। जिससे नाट्यों के कलाकारों का मनोबल बढा है। साथ ही इन माध्यमों ने नाट्यों की लोकप्रियता के पक्ष को भी सुदृढ़ किया है। इलैक्ट्रानिक मीडिया ने इनको जन–मानस तक पहुंचाने के लिये सुलभ रास्ता तो बनाया परन्तु कहीं न कहीं इनकी जड़ों तक पहुंचाने में असफल रहा है। जिस मंचन को वास्तविक तौर पर देखने से उसके पीछे का परिश्रम, उसके पात्रों की मेहनत व लगन देखने को मिलती है। उसे हम टी0वी0, आकाशवाणी या यू–ट्यूव आदि जैसे चैनलों पर देखकर महसूस नहीं कर सकते। आज की युवा पीढ़ी को इन लोकनाट्यों की जमीनी वास्तविकता से जुड़ाव नहीं है। वर्तमान में हमारे ये लोकनाट्य बाजार के दबाव, नवपूंजीवादी व्यवस्था, उपभोक्तावादी मानसिकता जैसी चुनौतियों से अपना अस्तित्व बचाने के लिये लड़ रहे हैं।

वास्तव में देखा जाये तो इन सभी समस्याओं के लिये कहीं न कहीं नवोपनिवेशवादी व्यवस्था जिम्मेदार रही है। वर्तमान में जहाँ सामाजिक मूल्यों में

गिरावट आई है। वहीं मानवीय संवेदनायें भी धीरे–धीरे खत्म होती जा रहीं हैं। आज वर्तमान में जो स्थिति है उसे हम अपनी संस्कृति की ओर लौटकर इस क्षति की पूर्ति कर सकते हैं। ये लोकनाट्य ही हमारी संस्कृति का मूलाधार रहे हैं। इन लोकनाट्यों की अपनी विशिष्ट परम्परा है। इनका अध्ययन ही हमें विश्व की संस्कृतियों का उदय व उनका विकास कैसे हुआ, समझाता है। इन नाट्यों की विशिष्ट परम्परा द्वारा ही एक समुदाय अपने सामाजिक एवं सांस्कृतिक गुणों को युगों तक जीवित रख पाता है। हमारे ये लोकनाट्य नैतिक, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सौन्दर्यशास्त्रीय, आध्यात्मिक, सामाजिक आदि रूप से एक स्वस्थ समाज के लिये उपयोगी सिद्ध हुये हैं।

अतः आवश्यकता है कि हमें अपनी संस्कृति की तरफ लौटना होगा। इनके पुर्नउत्थान के लिये आवाज उठानी होगी, जो संस्थान इस ओर अग्रसित हैं उन्हें बढ़ावा देना होगा। साथ ही इलैक्ट्रानिक मीडिया के माध्यम से इनके प्रचार एवं प्रसार में योगदान देना होगा। जिससे नैतिक मूल्यों का निरन्तर विकास हो सके तथा एक स्वच्छ, सुन्दर समाज का निर्माण हो सके।

संदर्भ सूची–

1. भारतीय लोकनाट्य– डॉ0 वशिष्ठ नारायण त्रिपाठी।
2. ब्रज–रास में संगीत– आरती श्रीवास्तव।
3. भारतीय लोकनाट्य स्वांग– डॉ0 हिमांशु द्विवेदी।

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www.aiirjournal.com